# कैसे बने क्षिप्रा फिर से सदानीरा

**डॉ. राम प्रताप गुप्ता एवं आर.सी. गुप्ता**

क्षिप्रा मालवा अंचल की प्रमुख एवं जीवन रेखा कही जाने वाली चंबल नदी की सबसे बड़ी सहायक नदी तो है ही, साथ ही देश के करोड़ों हिन्दुओं की आस्था का केन्द्र भी है। इसी नदी के दाहिने तट पर देश के 12 प्रमुख शिव लिंगों में से एक और प्राचीन एवं धार्मिक नगर उज्जैन भी स्थित है। वर्ष भर लाखों हिन्दुओं द्वारा विभिन्न पर्वों पर क्षिप्रा में स्नान करना मोक्षदायी माना जाता है। इसी के तट पर प्रत्येक 12 वर्ष में सिंहस्थ का मेला लगता है।

इस पृष्ठभूमि में इस अत्यंत छोटी और कुल मिलाकर केवल 180 कि.मी. लंबी इस नदी का बारहमासी बने रहना अत्यन्त आवश्यक है। कुछ दशक पूर्व ऐसा था भी। सन् 1971 में प्रकाशित सर्वे ऑफ इण्डिया की टोपोशीट में इसे तथा इसकी प्रमुख सहायक नदी गंभीर को बारहमासी नदी के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

आज स्थिति ठीक इसके विपरीत है, वर्षा के कुछ समय पश्चात ही इसमें जल प्रवाह नहीं रहता है। और थोड़े समय पश्चात इसमें स्थित अनेक डबरे (वॉटर पूल) भी सूख जाते हैं या लोगों द्वारा इनका पानी उलीचकर इन्हें सुखा दिया जाता है। इस वर्ष तो सरकार उज्जैन के निकट स्नान आदि कार्यों के लिए क्षिप्रा के नीचे हज़ारों वर्षों में संग्रहित भूजल भण्डारों के पानी को नलकूपों द्वारा उलीचकर इसमें पानी बनाए रखने का प्रयास कर रही है। यह अत्यन्त नासमझी पूर्ण तथा जल विज्ञान के सिद्धांतों के विपरीत है। ऐसा करने से आने वाले वर्षों में क्षिप्रा में जल का प्रवाह और कम हो जाएगा।

क्षिप्रा में पानी का प्रवाह बारिश के बाद जल्दी ही सूख जाने तथा इसके तल में स्थित भूजल भण्डारों को खाली करने की प्रक्रिया ने देश के भूजलविदों और पर्यावरण प्रेमियों को चिंता में डाल दिया है। प्रश्न यह है कि क्या क्षिप्रा को एक बार फिर बारहमासी बनाया जा सकता है?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें उस स्थिति का अध्ययन करना पड़ेगा जब यह नदी सन् 1971 तक सदानीरा थी। क्षिप्रा का उद्गम स्थल इंदौर के दक्षिण-पूर्व में 22 कि.मी. दूर स्थित कोकर बर्डी ग्राम के निकट है। यहां से निकलकर यह उत्तर-पश्चिम की ओर बहती है और बाद में ग्राम दखनखे के निकट इसकी सहायक नदी जीजावंती इसमें आकर मिलती है। इसके बाद व्यासखेड़ी ग्राम के निकट आशामति नाला इसमें आकर मिलता है और पूर्व से आने वाले दो अन्य नाले भी इसमें मिलकर इसे पुष्ट करते हैं। प्रारंभिक अवस्था में यह नदी वृक्षाकृति (dentric drainage pattern) में अपने थाले का निर्माण करती है जिसमें पानी के सर्वाधिक रिचार्ज की संभावना होती है। इस तरह प्रकृति ने इसमें वर्ष भर पानी की व्यवस्था की है। इसके पश्चात इसकी सहायक खान नदी अपने में बाण गंगा, खटकिया खाल और मोतीनाले का पानी समेटते हुए इसमें आकर मिलती है। उज्जैन शहर के नीचे एक और सहायक नदी गंभीर भी इसमें आकर मिलती है। इसकी सभी सहायक, उपसहायक नदियां मिलकर समानांतर जल प्रवाह प्रणाली का विकास करती है जो इसके पूरे थाले (बेसिन) के समान भूगर्भीय प्रणाली को प्रदर्शित करती है। क्षिप्रा आलोट के आगे चंबल नदी में मिल जाती है।

क्षिप्रा नदी का सम्पूर्ण थाला मध्यप्रदेश के सबसे विकसित क्षेत्र मालवा का भी विकसित क्षेत्र है। इसमें ही इंदौर, देवास और उज्जैन स्थित हैं। क्षिप्रा के थाले में कई उत्कृष्ट मल्टीपल एक्वीफर्स मौजूद हैं तथा इसकी भौगोलिक निरंतरता भी अच्छी है। क्षिप्रा के सभी जल स्रोत तथा इसके थाले की भूगर्भीय संरचना तथा भौगोलिक निरंतरता मिलकर इसमें साल भर जल प्रवाह बनाए रखते थे।

हमारे पूर्वजों ने इसमें साल भर जल प्रवाह बनाए रखने के लिए इसकी प्राकृतिक परिस्थिति पर ही निर्भर न रहकर स्वयं भी इस हेतु प्रयास किए थे। सर्वे ऑफ

इण्डिया (सन् 1971) के अनुसार इसके सम्पूर्ण थाले में सैकड़ों तालाब थे जो वर्षा के जल का संग्रहण कर क्षिप्रा में बाढ़ों पर नियंत्रण तो रखते ही थे, साथ ही वर्ष भर रिसन के माध्यम से इसमें जल प्रवाह बनाए रखने में सहायक भी थे। सर्वे ऑफ इण्डिया (1971) के मुताबिक क्षिप्रा के थाले में निर्मित तालाबों की संख्या 178 थी। ये तालाब भूजल स्तर को बढ़ाए रखकर नदी में ग्रीष्मकाल में भी जल पुनर्भरण करने में सहायक होते थे।

यहां इन तालाबों की कुछ विशेषताओं का उल्लेख आवश्यक है।

1. ये तालाब जल वितरक रेखा के दोनों ढलानों पर स्थित थे और कंटूर रेखाओं के समांतर बनाए गए थे ताकि वर्षा काल के पश्चात भी इनके निकट स्थित नदी-नालों को रिसन के माध्यम से इनका पानी मिलता रहे। खान के थाले में सांवेर के निकट मोतीनाले और छोटे नाले के बीच 10 तालाब के चलते आज भी इस क्षेत्र के नलकूप अच्छे भरे रहते हैं और इनके पानी की मदद से साल में 3 फसलें ली जाती हैं।

2. ग्राम लेकोड़ा में नाले के प्रारंभ में 4 तालाब बनाए गए हैं। तालाबों के निर्माण में वाटरशेड पद्धति का सफल प्रयोग किया गया है, एक तालाब से तो नहर द्वारा सिंचाई भी की जाती है।

3. क्षिप्रा नदी के उद्‌गम स्थल के तत्काल बाद तथा इसकी सहायक नदियों आशामति तथा जीजावंती के दोनों किनारों पर भी बड़ी संख्या में तालाबों का निर्माण किया गया था।

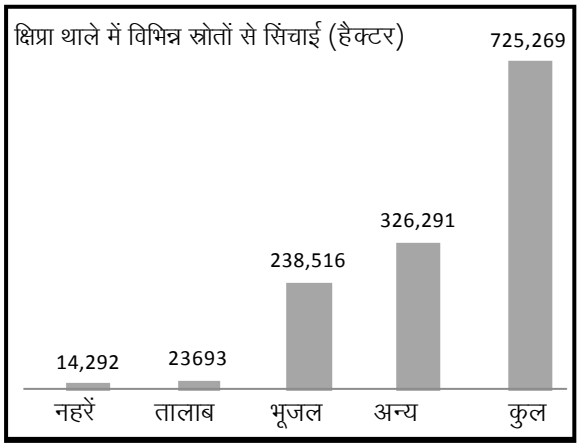


इस तरह हम देखते हैं कि अतीत में क्षिप्रा में सतत जल प्रवाह बनाए रखने की पूरी व्यवस्था की गई थी, समाज एवं प्राकृतिक घटक दोनों ही मिलकर इसे सदानीरा बनाए रखने के लिए सतत प्रयत्नशील थे। यही कारण है कि आज से 4 दशक पूर्व तक यह नदी छोटी होते हुए भी सदानीरा थी। निर्मित तालाब इस बात के द्योतक हैं कि हमारे पूर्वज जल विज्ञान प्रणाली से भलीभांति परिचित थे और किसी भी जल संरचना के निर्माण में इसके सिद्धांतों का पालन करते थे।

इसी बीच सत्तर के दशक में इस क्षेत्र में सिंचाई पर आधारित हरित क्रान्ति ने प्रवेश किया और कृषि में सिंचाई की मांग में तेज़ी से वृद्धि हुई। पचास के दशक में चंबल पर (जिसकी सहायक क्षिप्रा भी है) गांधीसागर बांध का निर्माण शुरू हुआ जो राजस्थान और मध्यप्रदेश की संयुक्त परियोजना, चंबल घाटी परियोजना, का एक अंग था। इस हेतु दोनों राज्यों के बीच यह भी निर्णय लिया गया कि गांधीसागर में पानी की पर्याप्त आवक बनाए रखने के लिए आगे से मध्यप्रदेश द्वारा चंबल के जल ग्रहण क्षेत्र में वर्षा जल के संग्रहण हेतु किसी भी संरचना का निर्माण नहीं किया जाएगा।

इस तरह क्षिप्रा के थाले सहित चंबल के पूरे जलग्रहण क्षेत्र को सिंचाई के सतही स्रोतों से वंचित कर दिया गया। तब सिंचाई की बढ़ती मांग की पूर्ति का सारा भार भूजल स्रोतों पर आ गया। परिणाम स्वरूप सन् 1970 के बाद की अवधि में क्षिप्रा के थाले में हज़ारों नलकूप, कुएं आदि खोदे गए। इनकी संख्या में वृद्धि से इस क्षेत्र के भूजल स्तर में तेज़ी से गिरावट आने लगी। इस क्षेत्र के भूजल स्रोतों का उनके पुनर्भरण की तुलना में दोहन अधिक होने लगा।

आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि क्षिप्रा का पूरा थाला भूजल भण्डारों के अति दोहन का शिकार हो गया है, इससे इस क्षेत्र का भूजल भी काफी नीचे चला गया है। गणना के अनुसार सन् 2004 में क्षिप्रा के पूरे

थाले में इस क्षेत्र के भूजल भण्डारों से 1,35,369 हैक्टर मीटर पानी का उद्‌वहन किया गया था, यह मात्रा इसमें वार्षिक पुनर्भरण की तुलना में 834 हैक्टर मीटर अधिक थी। पूरे क्षिप्रा थाले में भूजल का दोहन पुनर्भरण की तुलना में 102 प्रतिशत तक हो रहा है जबकि भूजल के दोहन के लिहाज़ से अधिकांश विकास खंडों को अतिदोहित की श्रेणी में रखा गया है।

किसान प्रति वर्ष सैकड़ों नए नलकूप, कुएं खुदवाकर भूजल के उद्‌वहन में तो वृद्धि कर रहे हैं परन्तु इनके पुनर्भरण में वृद्धि के प्रयास न तो किसान कर रहे हैं, न सरकार। इस तरह इन वर्षों में सिंचाई की बढ़ती मांग और सतही जल स्रोतों के दोहन पर प्रतिबंध से इस क्षेत्र के भूजल भण्डरों का दोहन टिकाऊ नहीं रह गया है।

क्षेत्र का भूजल स्तर भले ही नीचे जा रहा था, परन्तु सिंचाई आधारित हरित क्रान्ति के कारण सिंचाई की मांग तो बढ़ती ही जा रही थी। इस दौरान कृषि वैज्ञानिकों ने असिंचित कृषि की उत्पादकता में वृद्धि की दिशा में कोई प्रयास नहीं किए। इस तरह एक तरफ तो क्षेत्र में सिंचाई की मांग में वृद्धि हो रही थी, दूसरी तरफ गांधीसागर में जल की आवक को बनाए रखने के लिए सरकार ने सतही जल सिंचाई योजनाओं को क्रियान्वित नहीं किया। इसके चलते सिंचाई की बढ़ती मांग का सारा भार भूजल भण्डरों पर आ पड़ा। उनका अतिदोहन होने से उनसे सिंचाई संभावनाएं भी समाप्त होती जा रही थीं। ऐसे में किसानों ने क्षेत्र की नदियों, तालाबों, नालों से सीधे पानी पंप कर सिंचाई करना शुरू कर दिया। राजस्व विभाग इस तरह सिंचाई के आंकड़ों को 'अन्य स्रोतों से सिंचाई' शीर्षक के तहत प्रस्तुत करता है। क्षिप्रा के थाले में इस स्रोत से कितनी सिंचाई की जाती है, इसके आंकड़े तो उपलब्ध नहीं हो पाए हैं परंतु यह थाला जिन ज़िलों में स्थित है, उनके आंकड़े ज़रूर उपलब्ध हैं।

ये आंकड़े दर्शाते हैं कि इन ज़िलों में 'अन्य स्रोतों' से सिंचित क्षेत्र कुल में से 60 प्रतिशत के लगभग है। राजस्व अधिकारियों के अनुसार 'अन्य स्रोतों' से सिंचित क्षेत्र से आशय उस क्षेत्र से है जहां नदी, नालों, तालाबों से सीधे पंप कर सिंचाई होती है। इस क्षेत्र में अनेक किसानों ने तो सिंचाई के लिए नदी-नालों के अंदर ही स्थाई/अस्थाई कुएं, नलकूप बना लिए हैं। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि क्षिप्रा के थाले में अधिकांश सिंचाई नदी, नालों आदि के पानी को सीधे पंप करके की जाती है।

उपरोक्त विश्लेषण के निष्कर्षों को निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता हैः

1. तालाब और नदियों पर छोटे-छोटे बांध भूजल भण्डारों का पुनर्भरण करते है। हमारे पूर्वजों ने तालाबों का जाल बिछाकर उनके माध्यम से भूजल भण्डारों के पुनर्भरण की सशक्त व्यवस्था की थी परन्तु पिछले 30-40 वर्षों से यह व्यवस्था भंग सी हो गई है। क्षिप्रा के थाले में तालाबों और नहरों से सिंचित क्षेत्र का योगदान 5 प्रतिशत से भी कम है।

2. क्षिप्रा के थाले के ज़िलों में कुल सिंचित क्षेत्र में कुओं/नलकूपों से सिंचित क्षेत्र का योगदान एक तिहाई के लगभग है। मगर आंकड़े बताते हैं कि क्षेत्र के भूजल भण्डार अतिदोहन के शिकार हो हैं। कारण दो हो सकते हैंः, पहला कि भूजल भण्डारों के पुनर्भरण की समुचित व्यवस्था न होने से उनकी क्षमता ही सीमित हो गई है और दूसरा कि सिंचाई की मांग टिकाऊ स्तर से अधिक हो गई है। या यह इन दोनों घटकों का मिला-जुला प्रभाव भी हो सकता है।

3. इस क्षेत्र में 'अन्य स्रोतों' से सिंचित क्षेत्र का योगदान 60 प्रतिशत से भी अधिक है। अर्थात कुओं/नलकूपों से सिंचाई की संभावना के सीमित होने के कारण किसान नदियों, नालों से सीधे पानी पंप कर सिंचाई करने लगे हैं जिससे क्षेत्र की नदियों में जल प्रवाह दिसम्बर-जनवरी के माह आते-आते प्रायः समाप्त हो जाता है। इसी के साथ नदियों, नालों में खोदे गए कुएं, नलकूपों में भी पानी कम होने लगता है।

4. नदियों और भूजल स्रोतों, दोनों से भारी मात्रा में पानी उलीचे जाने के कारण क्षेत्र के गांव-शहर गर्मियों में भारी जलाभाव की समस्या से पीड़ित हो रहे हैं। भूवैज्ञानिकों के अनुसार किसी भी क्षेत्र में इस तरह की परिस्थितियां

उसके मरुस्थलीकरण का संकेत है। अनेक भूवैज्ञानिकों का कथन भी है कि मालवा क्रमशः मरुस्थलीकरण की दिशा में आगे बढ़ रहा है।

5. इस पृष्ठभूमि में यह आवश्यक है कि अगर हम पग-पग रोटी, डग-डग नीर वाले मालवा को मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया से मुक्त रखना चाहते हैं तो ऐसी योजनाओं का क्रियान्वयन आवश्यक है जिनके माध्यम से भूजल भण्डार का पुनर्भरण हो सके, साथ ही उनकी सिंचाई क्षमता में वृद्धि हो सके। भूजल स्तर में वृद्धि होने से मिट्टी में आर्द्रता भी बढ़ेगी। तालाबों के निर्माण से यह संभव होगा। मिट्टी में आर्द्रता बढ़ेगी तो 'अन्य स्रोतों' से इतने बड़े क्षेत्र में सिंचाई की इतनी अधिक आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी।

6. क्षिप्रा के थाले में कृषि के योग्य सारी भूमि पर खेती की जाने लगी है और इसके कारण इस क्षेत्र में वनों का प्रतिशत गिरकर मात्र 0.5 प्रतिशत रह गया है। वर्षा जल को भूमि में पहुंचाने में वन सहायक होते हैं। वन क्षेत्र के लगभग शून्य रह जाने से भूजल भण्डारों के पुनर्भरण की प्रक्रिया बाधित हुई है।

7. क्षिप्रा के थाले सहित पूरा मालवा क्षेत्र जलदोहन के विकृतिपूर्ण ढांचे का प्रतीक बन गया है। वर्तमान ढांचे का जारी रहना इस क्षेत्र की परिस्थिति को क्षति पहुंचा रहा है। इसका दुष्परिणाम न केवल वर्तमान पीढ़ी को, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को इससे भी विकराल रूप में भुगतना पड़ेगा। हमारे पूर्वजों ने तो हमें जल दोहन का सम्यक ढांचा विरासत में दिया था जो इकॉलॉजी की दृष्टि से उपयुक्त था। अब यह हमारा दायित्व है कि आने वाली पीढ़ियों को जल दोहन का विकृतिपूर्ण ढांचा विरासत में देने की बजाय एक संतुलित व टिकाऊ ढांचा प्रदान करें।

## कुछ प्रस्ताव

क्षिप्रा के धार्मिक महत्व को देखते हुए म.प्र. सरकार के समक्ष कुछ प्रस्ताव रखे गए हैं। एक प्रस्ताव नर्मदा नदी से पानी लाकर इसमें डालने का भी है। इस योजना की अनुमानित लागत 326 करोड़ रुपए है। इस योजना को अभी सरकार की स्वीकृति नहीं मिली है, परन्तु यह नदी जोड़ योजना के आधुनिक सोच का प्रतीक है। पूर्व में ही मालवा में सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के लिए राजगढ़, गुना ज़िलों में बहने पार्वती, नेवज और कालीसिंध के पानी को लाने तथा उसके कुछ भाग को गांधीसागर में डालने के प्रस्ताव को क्रियान्वित किया जा रहा है, जिस पर सिंचाई विशेषज्ञों एवं पर्यावरणविदों द्वारा गंभीर प्रश्न चिन्ह लगाए गए हैं। ऐसे में नर्मदा-क्षिप्रा को जोड़ने की योजना की व्यावहारिकता भी शंकास्पद ही है। अन्य उपाय तलाशने की ज़रूरत है।

## वैकल्पिक उपाय

क्षिप्रा में पानी के बढ़ते अभाव के पीछे इस क्षेत्र में पानी की मांग और पूर्ति के मध्य बढ़ती खाई है और इस खाई को पाटने के लिए जो प्रयास किए जा रहे हैं, वे इस क्षेत्र की इकॉलॉजी को भारी क्षति पहुंचा रहे हैं। ऐसे में प्रश्न उठता है कि इस क्षेत्र में पानी की बढ़ती मांग की आपूर्ति के लिए क्या किया जाना चाहिए।

जहां तक मांग का प्रश्न है, पानी की कुल मांग का 90 प्रतिशत से भी अधिक भाग कृषि में प्रयुक्त होता है। ऐसे में प्रश्न उठता है कि कृषि में पानी की मांग को किस तरह कम किया जाए। इस समय सिंचाई का मुख्य तरीका कुओं और नदियों के पानी को सीधे फसलों को देने का है। अगर हम खेतों में सिंचाई के लिए स्प्रिंकलर या ड्रिप सिंचाई विधि का उपयोग करें तो अनुमान है कि इससे सिंचाई में पानी की खपत को 50 प्रतिशत कम किया जा सकता है। परन्तु इसके लिए प्रारंभ में खेतों में नलों का जाल बिछाना पड़ता है, जो काफी खर्चीला होता है और किसान के लिए अपने बूते पर इतना निवेश करना संभव नहीं होगा। सरकार को इसमें मदद देने के लिए आगे आना होगा। इस समय म.प्र. सरकार कृषकों को

नलकूप खुदवाने के लिए 30,000 रुपए का अनुदान देती है जो क्षिप्रा के थाले के कृषक के लिए भी है। जैसा कि हमने ऊपर देखा है, क्षिप्रा के थाले में पूर्व में ही भूजल का इतना अधिक दोहन हो रहा है कि पूरा क्षेत्र अतिदोहित की श्रेणी में आ रहा है। अतः इस क्षेत्र के कृषकों को नलकूप बनाने के लिए 30 हज़ार रुपए की वर्तमान व्यवस्था पर रोक लगाने की आवश्यकता है। इस राशि को स्प्रिंकलर या ड्रिप सिंचाई विधि लगाने के लिए प्रदत्त अनुदान की वर्तमान व्यवस्था में शामिल कर किसानों को इस दिशा में और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। पूरे थाले में इस व्यवस्था को लागू करने की आवश्यकता है ताकि इस क्षेत्र में कृषि के लिए पानी की बढ़ती मांग पर रोक लग सके तथा किसानों की सिंचाई की आवश्यकता भी पूरी हो सके।

हरित क्रान्ति पूरी तरह सिंचाई सुविधाओं पर आश्रित है, कृषि वैज्ञानिकों द्वारा असिंचित कृषि की उत्पादकता में वृद्धि के कोई प्रभावी प्रयास नहीं किए गए हैं। अगर असिंचित कृषि की उत्पादकता में वृद्धि की टेक्नॉलॉजी विकसित हो, तो सिंचाई की बढ़ती मांग पर रोक लगेगी।

कृषि में पानी की मांग पर अंकुश लगाने के प्रयासों के अतिरिक्त क्षिप्रा में पानी की आपूर्ति में वृद्धि की दिशा में प्रयासों की और भी अधिक आवश्यक है। हमने पूर्व में देखा कि हमारे पूर्वजों ने क्षिप्रा में मिलने वाले मोती नाले, छोटे नाले, आशामति, जिजावंती आदि के दोनों ओर तालाबों का जाल बिछा रखा था। इसी प्रक्रिया को हमें और आगे बढ़ाना होगा। इनके आसपास कहां-कहां तालाब बनाए जा सकते हैं, इस हेतु पूरे थाले के व्यापक सर्वेक्षण की आवश्यकता है। हो सकता है कि तालाबों की उपयुक्त भूमि पर वर्तमान में खेती की जा रही हो, ऐसी स्थिति में उस भूमि का अधिग्रहण किया जाना चाहिए तथा ऐसी भूमियों के स्वामियों में कोई असंतोष न फैले, इस हेतु उन्हें पर्याप्त एवं समुचित मुआवज़ा दिया जाना चाहिए। तालाबों का संजाल ही क्षिप्रा में पानी के बारहमासी प्रवाह को बनाए रख सकता है।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, क्षिप्रा के थाले में वनों के अंतर्गत भूमि नगण्य है। इसमें वृद्धि के प्रयास आवश्यक हैं। वृक्ष नदी-नालों में जल प्रवाह बनाए रखने में सहायक होते हैं। बंजर भूमि जितनी भी हो उस पर उपयुक्त किस्म के वृक्ष लगाए जाने चाहिए। किसानों को भी अपनी भूमि पर उद्यान विकसित करने को प्रोत्साहित करना चाहिए। चूंकि आरंभिक वर्षों में उद्यानों से किसानों को कोई आय नहीं होती अतः इस दिशा में प्रयास करने वाले कृषकों को समुचित अनुदान की व्यवस्था की जानी चाहिए।

इन वर्षों में किसानों द्वारा रासायनिक खाद के अधिक उपयोग के कारण भूमि में जैविक पदार्थों का अंश कम हो जाने से भूमि में वर्षा के पानी के अवशोषण की प्रक्रिया में बाधा आ गई है। अतः कृषकों को जैविक खाद के उपयोग के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि भूमि में जैविक पदार्थों का अंश बढ़े, उसकी वर्षा जल के अवशोषण की क्षमता में वृद्धि हो और भूजल भण्डारों को समृद्ध बनाए रखा जा सके।

यहां तरूण भारत संघ द्वारा राजस्थान के अलवर जिले की थानागाछी तहसील में 65 ग्रामों एवं करौली ज़िले में वर्षो के पानी को रोककर इन क्षेत्रों की नदियों, अरवारी एवं महेश्वरा को पुनर्जीवित करने के प्रयासों को दोहराना होगा। महेश्वरा नदी के थाले में उन्होंने 58 लाख रुपए की लागत से 369 जल संरचनाओं का निर्माण किया और उस क्षेत्र में वर्षा का औसत मात्र 23 इंच होने के बावजूद वे महेश्वरा नदी को सदानीरा बना सके। इसी तरह अलवर की थानागाछी तहसील में सूख चुकी अरवारी नदी के अलावा इस क्षेत्र की 4 अन्य नदियों को ऐसी संरचनाओं अर्थात तालाबों, रोक बांधों से पुनः सदानीरा बनाने में मदद मिली है। अगर हम तालाबों, रोक बांधों के निर्माण एवं वृक्षारोपण के ऐसे ही प्रयोग क्षिप्रा के थाले में दोहरा सकें, तो क्षिप्रा सदानीरा हो जाएगी। इस क्षेत्र में तो औसत वर्षा का स्तर 34 इंच है (जो कि राजस्थान के अलवर जिलों की थानागाछी तहसील एवं करौली ज़िले की 23-24 इंच वर्षा से काफी अधिक है) जो इस क्षेत्र के इकॉलॉजिकल सुधार को अधिक आसान बना सकेगा। इकॉलाजी की बहाली ही स्थिति में सुधार का सबसे कम लागत का विकल्प होता है। ***(स्रोत फीचर्स)***